Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4 September-October 2025 / VOL -02 ISSUE-II

10

समकालीन हिंदी साहित्य में हस्तीमल 'हस्ती' की ग़ज़लों में मानवीय चेतना और संवेदनात्मक दृष्टि

डॉ. कविता संदीप तळेकर
हिंदी विभाग
श्री पंचम खेमराज महाविद्यालय सावंतवाड़ी सिंधुदुर्ग।

सारांश

हिंदी ग़ज़ल परंपरा में हस्तीमल 'हस्ती' का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। उनकी ग़ज़लें मनुष्य के भीतर छिपे दर्द, संवेदना, रिश्तों की नाजुकता और जीवन की सच्चाइयों को बड़ी सहजता से व्यक्त करती हैं। वर्तमान युग भागदौड़ असंवेदनशीलता, और आत्मकेंद्रित प्रवृत्तियों से भरा है। ऐसे समय में हस्तीमल 'हस्ती' की ग़ज़लें मानवीय चेहरों के पीछे छिपे मुखौटे को उजागर करती हैं।

हस्तीमल हस्ती हिंदी ग़ज़ल के ऐसे कवि हैं जिन्होंने ग़ज़ल को केवल प्रेम और सौंदर्य तक सीमित नहीं रखा, बल्कि समाज, राजनीति, मानवीय मूल्यों और अस्तित्व के प्रश्नों तक विस्तारित किया। हिंदी-उर्दू के सेतु माने जाते हैं। उनकी ग़ज़लों में भाषा की सहजता, भाव की गहराई और अभिव्यक्ति की नवीनता विशेष रूप से दिखाई देती है। हिंदी ग़ज़ल का विकास स्वतंत्रता के बाद के काल में विशेष रूप से हुआ। दुष्यंत कुमार, अदम गोंडवी, बशीर बद्र, कुंवर बेचैन आदि के बाद हस्तीमल हस्ती का नाम उस पीढ़ी में लिया जाता है जिसने ग़ज़ल को जन-संवेदना से जोड़ा। उनकी ग़ज़लें मानवीय अनुभवों की बारीकियों को छूती हैं चाहे वह सामाजिक असमानता हो, रिश्तों की नर्मी हो या अस्तित्व की बेचैनी। हस्तीमल हस्ती की ग़ज़लें हिंदी ग़ज़ल को गहराई और व्यापकता देती हैं। उन्होंने अपने शब्दों के माध्यम से संवेदना, संघर्ष और सच्चाई का संसार रचा है। वे उन शायरों में हैं जिन्होंने ग़ज़ल को आम आदमी की आवाज़ बनाया।

प्रस्तावना : हस्तीमल 'हस्ती' की ग़ज़ल "मुद्दत हुई है" और "मुहब्बत का ही इक मोहरा नहीं था" जैसी रचनाएँ वर्तमान समाज की सच्चाई को बड़ी सरलता और गहराई से उजागर करती हैं। कवि की दृष्टि में असली सुंदरता बाहरी नहीं, बल्कि भीतर की सच्चाई और संवेदनशीलता में है। उनकी ग़ज़लें आज के युग में आत्मबोध और मानवता की पुनर्स्थापना का संदेश देती हैं। आज समाज में लोग नकली चेहरा बनाकर घूम रहे हैं। अमानवीयता तो सारी हदें पार कर दी है और सबको यह समझा देते हैं कि इस दुनिया में मुहब्बत के बदले केवल चालबाजियाँ लोग करने लगे हैं। विश्वास की बात को छोडकर लोग धोखाधडी करने लगे है। मानवीय संबंधों के संदर्भ में सच ही नजर आती हैं कि जीवन में जिससे उम्मीद की जाए वही बदल जाता है। इस दुनिया में कब कौन जख्म दे इसका कोई निश्चित समय नहीं है। जिस गति से ये दुनिया आगे बढ़ रही है, उसमें मानवीय प्रवृत्तियाँ कहीं दब गई हैं और एक दिखावटीपण पैदा हो गया।

मुख्य विषय

आज का मनुष्य भौतिकता की दौड़ में अपने असली चेहरे को भूल चुका है। वह नफ़रत, ईर्ष्या, साज़िश और द्वेष से घिरा हुआ है। कवि यह दिखाना चाहते हैं कि समाज में अच्छाई से अधिक बुराई हावी हो चुकी है। मनुष्य को अपने भीतर झाँकना होगा, आत्मचिंतन करना होगा तभी उसे अपनी कमजोरियाँ, अपनी गलती और अपनी नैतिकता का बोध होगा। ग़ज़ल के माध्यम से कवि यह संदेश देते हैं कि इंसान अगर इंसानियत को भूल जाएगा,तो उसका चेहरा चाहे कितना सुंदर हो, लेकिन वह नकली ही रहेगा।
वह अपनी गजल में लिखते हैं-

"मुहब्बत का ही इक मोहरा नहीं था,
तेरी शतरंज पे क्या-क्या नहीं था।
सजा मुझको ही मिलनी थी हमेशा,
मेरे चेहरे पे जो चेहरा नहीं था।"[1]

इस ग़ज़ल में कवि ने प्रेम और जीवन की विडंबना दोनों को एक साथ चित्रित किया है। 'शतरंज' प्रतीक है समाज और संबंधों के उस खेल का जिसमें हर व्यक्ति एक मोहरा बन जाता है। 'मुहब्बत' का मोहरा सिर्फ प्रेम तक सीमित नहीं, बल्कि राजनीति, स्वार्थ और छल का भी संकेत देता है। दूसरे गजल में कवि आत्मस्वीकार करता है कि दंड हमेशा उसी को मिला जो सच्चा था। 'चेहरा' यहाँ प्रतीक है व्यक्तित्व और पहचान का अर्थात जिसने मुखौटा पहना, वही सफल हुआ, और जो सच्चा रहा, वही दंडित हुआ।

हस्ती की ग़ज़लें मनुष्य के भीतर की टूटन, असहायता और आंतरिक द्वंद्व को उजागर करती हैं। वह मनुष्य को अपने भीतर झाँकने, आत्मचिंतन करने और ईमानदारी की राह पर चलने का आह्वान करते हैं। उनकी रचनाएँ केवल शिकायत नहीं करतीं, बल्कि एक मानवीय समाधान भी प्रस्तुत करती हैं कि इंसान अपनी अच्छाई और मानवता से ही अपनी पहचान बनाए रख सकता है। इसके हर एक गजल जवाहरात के शेर की तरह होते है, जिसमें सभी हीरे अपनी जगह पर जगमगाते हैं।

©Copyright 2024 *ADRJ*. All Rights Reserved

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4 September-October 2025 / VOL -02 ISSUE-II

समाज में व्याप्त दुःख पर रोशनी डालने का काम रचना के द्वारा होता है। इसके लिए लोगों के जुल्म ही क्यों न सहने पडे या, अपना खून ही क्यों न बहाना पड़े। जिस तरह प्रकृति में ऋतु परिवर्तन होता है, उसी प्रकार मनुष्य में भी बदलता है। कभी आनंद, प्रेम, विरह तो कभी क्रोध में ढलने वाले आदमी को वे कहते हैं। आज का समाज छल, कपट, द्वेष और स्वार्थ से भरा है। हर व्यक्ति बाहरी आवरण में सजा हुआ है, पर भीतर से खोखला है। इसी संदर्भ में हस्ती जी की यह पंक्तियाँ अत्यंत सटीक लगती हैं —

"काँच के टुकड़ों को महताब बताने वाले,
हमको आते नहीं आदाब ज़माने वाले।
गांठ अगर लग जाए तो फिर रिश्ते हों या डोरी,
लाख करें कोशिश खुलने में वक्त तो लगता है।"[2]

इन गजल में विश्वास की कमी, रिश्तों की जटिलता, और दिखावे की संस्कृति पर प्रहार किया गया है। कवि मानते हैं कि जब व्यक्ति की आत्मा मुरझा जाती है, तब समाज का चेहरा भी अमानवीय बन जाता है। हस्ती की ग़ज़लें केवल संवेदनशील नहीं, बल्कि तीखे व्यंग्य से भरी हुई हैं। वे समाज के तथाकथित "भगवानों" पर चोट करते हैं जो सत्ता या धन के बल पर दूसरों को दबाते हैं —

"आते-जाते डर लगता है,
ये राजा का दर लगता है।
ये धरती के इन भगवानों से,
ईश्वर को भी डर लगता है।"[3]

यह व्यंग्य आज के समाज की सबसे बड़ी सच्चाई है जहाँ न्याय और नैतिकता के स्थान पर भय और अन्याय का राज है।

हस्ती की ग़ज़लों में प्रेम, दया, विनम्रता, आत्म-सम्मान और हमदर्दी जैसे मानवीय गुण बार-बार प्रकट होते हैं। वे मनुष्य से आग्रह करते हैं कि वह अपनी आत्मा की आवाज़ सुने, दूसरों से मानवता का व्यवहार करे।
उनकी ये पंक्तियाँ इस विचार को और स्पष्ट करती हैं —

"प्यार की दुनिया से नाता जोड़कर देखो कभी,
जिसको छू दोगे वो पत्थर आईना हो जाएगा।
सीख ले ऐ दोस्त अपने आप से यारी का फन,
वरना तेरा जिंदगी से फ़ासला हो जाएगा।"[4]

यहाँ कवि ने प्रेम को जीवन परिवर्तन का साधन बताया है। जो व्यक्ति सच्चे प्रेम और आत्मीयता से जुड़ता है, उसका हृदय पत्थर से भी कोमल हो जाता है। हस्तीमल 'हस्ती' की ग़ज़लें केवल साहित्यिक सृजन नहीं, बल्कि मानवता की पुकार हैं। वे आधुनिक मनुष्य के खोखलेपन पर प्रश्न उठाती हैं और उसे आत्मचिंतन की राह दिखाती हैं। उनकी रचनाओं में समकालीन समाज की विडंबनाएँ भी हैं और सुधार का संदेश भी।

मनुष्य का जीवन सुख-दुःख से भरा है, जीवन में सुख की अपेक्षा दुःख अधिक भुगतना पडता है। मनुष्य अपने जीवन में दुःख न मिले इसलिए प्रयास करता है। इस दुनियाँ में ऐसे भी लोग हैं जो जीवन के दुखों से अनभिज्ञ हैं। उनके जीवन में सुख ही सुख होते हैं। वे जीवन की असलियत, दुःख, अभाव, गरीबी, छल, कपट, धोखा, जटिलताओं तथा समस्याओं से अनभिज्ञ होते हैं। जब उनका इन दुखों तथा जीवन की असलियत से सामना होता है, तो वे टूट जाते हैं और स्वयं को संभल नहीं पाते। ऐसे समय स्वयं को संभलने के लिए मनुष्य को पहले से ही दुःख का, जीवन की असलियत का अनुभव होना चाहिए। इसलिए कवि भगवान से प्रार्थना करते हैं कि वह दुःख उनके जीवन जीने का सहारा बन जाएगा। याने जीवन में दुःख का अपना अलग महत्त्व है। मनुष्य की अपनी तालीम अच्छी होनी चाहिए। वह अपने जीवन में शिक्षा, परिश्रम, संस्कार तथा निरंतर संघर्ष करने की तालीम प्राप्त करता है तो उसके विरोधी एवं प्रतिस्पर्धी उसके सामने कितने भी संकट खड़े करें, वह अपनी तालीम के बल पर अपने लक्ष्य तक पहुँच पाता है। इसलिए कहते हैं कि, देखते हैं किसमें कितना दम है, तुम हवाएँ (संकट, तुफान, समस्याएँ) ले के आओ मैं अपने परिश्रम, शिक्षा तथा संघर्ष के बल पर इस तूफान में भी अपने लक्ष्य प्राप्ति का दीया जलाकर दिखा देंगा।

हस्तीजी समाज में व्यापक भ्रष्टाचार, जाती-पाँति, भेद-भाव, अमीर-गरीब, अच्छा-बुरा, झूठा सच, प्रीति और नफरत सभी के प्रति अपनी कलम चलाते हैं। एक अलग किस्म की प्रेम भावना पूरी आत्मविश्वास और आत्म सम्मान से रचनाओं में अभिव्यक्त करते हैं।

"कुदरत के उपहार को समझ सके ना लोग,
धन्य हो गया वो जिसे लगा प्रेम का रोग।
मधु ऋतुओं ने प्रेम का जब भी छिड़का इत्र,
तन-मन, अंतरा, आत्मा सारे हुए पवित्र।"[5]

©Copyright 2024 ADRJ. All Rights Reserved

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4 September-October 2025 / VOL -02 ISSUE-II

यहाँ प्रेम आत्मा की शुद्धि और मनुष्य की मानवता का प्रतीक बन जाता है।हस्ती जी आधुनिक सभ्यता और संस्कृति के विकास के बावजूद मानवीयता के पतन से चिंतित हैं।वे कहते हैं कि कविता ही वह धागा है जो संवेदनाओं को जोड़कर मनुष्यता को जीवित रखती है।

"ज़िंदगी उन काग़ज़ों की हो गई है कामयाब,
प्यार में जो काम आए चिट्ठियों के वास्ते।"[6]

यह व्यंग्य आधुनिक जीवन के खोखलेपन और भावनाओं की कृत्रिमता पर करारा प्रहार है। कवि यहाँ यह प्रश्न उठाता है कि क्या प्रगति के इस युग में हम अपनी भावनाएँ खो चुके हैं? हस्ती जी की दृष्टि यह सिखाती है कि सच्चा मनुष्य वही है जो अपने भीतर की रोशनी से दूसरों को प्रकाशित करे।

हस्ती जी सहज, संवेदनशील और दृष्टिसंपन्न ग़ज़लकार हैं। उनकी ग़ज़लें एक ओर जहाँ समय की कठोर सच्चाइयों को उजागर करती हैं, वहीं दूसरी ओर मन की कोमल भावनाओं का सुंदर चित्र भी अंकित करती हैं। वे ग़ज़ल को केवल शिल्प नहीं, बल्कि जीवन का अनुभव मानते हैं जहाँ प्रत्येक शेर एक जीवन-दर्शन को प्रकट करता है। हस्ती जी के काव्य में प्रेम केवल व्यक्तिगत अनुभूति नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और मानवीय मूल्य के रूप में प्रकट होता है। उनकी दृष्टि में प्रेम का अर्थ सीमाओं, सरहदों और भेदभाव से परे है — **"उसे जगह सरहदी नहीं होती, / जिस जगह नफ़रतें नहीं होती। / निकले हो रास्ता बनाने को, तुमने देखा नहीं ज़माने को।"[7]**

यहाँ कवि ने प्रेम को मानव एकता और वैश्विक सद्भाव का प्रतीक बनाया है। उनकी दृष्टि में प्रेम ही वह शक्ति है जो टूटे हुए समाज को जोड़ सकती है। हस्ती जी की ग़ज़लें मनुष्य को निराशा, हताशा और कुंठा से उबारकर नई ऊर्जा और साहस देती हैं। वर्तमान समाज की जटिलता के बीच भी वे मनुष्य को आत्मविश्वास से भरने का संदेश देते हैं। **"ऊँचे-ऊँचे सर भी उस दिन शर्म से झुक जाएंगे, / जब भी उनका आईने से सामना हो जाएगा।"**

यह ग़ज़ल केवल आत्मचिंतन नहीं, बल्कि नैतिक जागृति का प्रतीक है। कवि चाहता है कि हर व्यक्ति अपने भीतर झाँके और अपने कर्मों का मूल्यांकन करे। हस्ती जी की ग़ज़लें केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि सामाजिक आलोचना का माध्यम भी हैं। वे भ्रष्टाचार, जातिवाद, सांप्रदायिकता, और अन्यायपूर्ण व्यवस्था पर तीखा प्रहार करते हैं।

"चाहे जितने तोड़ लो तुम मंदिरों के वास्ते,
फूल फिर भी कम न होंगे तितलियों के वास्ते।
सरहद में जो कटते तो कोई ग़म नहीं होता,
है ग़म तो ये सर घर की लड़ाई में कटे थे।
सबको अपने लिए रौशनी चाहिए,
कोई जलता नहीं दूसरों के लिए।"[8]

इन ग़ज़लों में कवि ने सामाजिक विडंबना और मानवता के विघटन पर गहरा व्यंग्य किया है। वे कहते हैं असली त्रासदी यह नहीं कि लोग मर रहे हैं, बल्कि यह है कि लोगों के भीतर की रोशनी बुझ रही है। हस्ती की रचनाएँ आदमीयत से गहरी जुड़ी हैं।

उनकी ग़ज़लों में विरोध, संघर्ष, और परिवर्तन की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। वे व्यवस्था की पंगुता, व्यक्ति की विवशता और समाज की विडंबनाओं पर विचार करते हैं परंतु साथ ही आशा, करुणा और सुधार की राह भी दिखाते हैं। उनका मानना है कि रिश्तों को बचाने के लिए अहंकार का विसर्जन आवश्यक है। मानवता तभी जीवित रह सकती है जब मनुष्य दूसरों की खुशियों को अपनी प्राथमिकता समझे।

निष्कर्ष : हस्तीमल 'हस्ती' समकालीन हिंदी ग़ज़ल के उन कवियों में हैं जिन्होंने मनुष्य के भीतर की रोशनी, संवेदना और प्रेम को पुनर्जीवित करने का कार्य किया। उनकी ग़ज़लें समाज के लिए आईना हैं जहाँ व्यक्ति स्वयं को देख सकता है, समझ सकता है, और बदल सकता है। उनका काव्य हमें यह सिखाता है कि विकास की सबसे बड़ी पहचान यह नहीं कि हमारे पास क्या है,बल्कि यह है कि हमारे भीतर कितनी मानवता बची है। इस प्रकार हस्ती की ग़ज़लें हिंदी साहित्य में संवेदना, व्यंग्य और मानवीय मूल्य तीनों का संतुलित समागम प्रस्तुत करती हैं।

संदर्भ सूची :

1. हुबनाथ पांडेय, ग़ज़लकार हस्तीमल हस्ती, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2019, प्र.सं., पृष्ठ–153।
2. हरेराम समीप, हस्तीमल हस्ती के चुनिंदा अशआर, समन्वय प्रकाशन, गाजियाबाद, 2021, प्र.सं., पृष्ठ–38।
3. वही, पृष्ठ–84।
4. हुबनाथ, युगीन काव्य (काव्य-बोध की त्रैमासिकी), अप्रैल–सितंबर 2024, पृष्ठ–40।
5. हस्तीमल हस्ती, सच्चा तीर्थ प्रेम का, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2022, प्र.सं., पृष्ठ–26।
6. हुबनाथ, युगीन काव्य (काव्य-बोध की त्रैमासिकी), अप्रैल–सितंबर 2024, पृष्ठ–42।
7. हरेराम समीप, हस्तीमल हस्ती के चुनिंदा अशआर, समन्वय प्रकाशन, गाजियाबाद, 2021, प्र.सं., पृष्ठ–38।
8. वही, पृष्ठ–42।

©Copyright 2024 ADRJ. All Rights Reserved

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4 September-October 2025 / VOL -02 ISSUE-II

11

सेंद्रिय शेती व्यवसायातील समस्या आणि उपाय

डॉ. महादेव गुलाबराव थोपटे
अर्थशास्त्र विभाग प्रमुख
सुभाष बाबुराव कुल कला,वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, केडगाव ता.- दौंड, जि. पुणे

प्रास्ताविक

वाढत्या प्रदूषणामुळे आणि हवामानातील बदलामुळे शेतातील पिकांची प्रचंड हानी होत आहे. अशी हानी टाळण्यासाठी शेतकरी अधिकाधिक रासायनिक खते आणि कीटकनाशकांचा वापर करत आहे. अति रासायनिक खते आणि कीटकनाशकांमुळे शेतजमिनीच्या नुकसाना बरोबर मानवी आरोग्यावर त्याचे गंभीर परिणाम होत आहेत. कॅन्सर सारखे आजार मानवाच्या मागे लागले आहेत तर जमिनीची नापीकता वाढत चाललेली आहे. ही समस्या बागायती क्षेत्राबरोबर जिरायत क्षेत्रामध्ये वाढत चाललेली आहे. या दोन्ही समस्यांवर मात करण्यासाठी सेंद्रिय शेतीचा पर्याय पुढे येत आहे. विषमुक्त शेती ही संकल्पना या मधूनच पुढे येत आहे मात्र शेतकरी पिकाची निवड करत असताना तो द्विधा मनस्थितीत सापडलेला आहे. संपूर्ण शेती सेंद्रिय पद्धतीची केल्यास उत्पादनात घट होते. उत्पादनामध्ये हवी असणारी गुणवत्ता निर्माण होत नाही कमी उत्पादकता मिळाल्याने शेतकऱ्यांचे उत्पन्न घटन्याची शक्यता असते. कमी उत्पादन जादा किंमतिला विक्री झाल्यास उत्पन्न वाढू शकते., मात्र सद्यस्थितीतील बाजार यंत्रणेत तशी स्थिती दिसून येत नाही. सेंद्रिय पद्धतीने पिकवलेला भाजीपाला,फळे, इतर अन्नधान्य यांची गुणवत्ता, चमक काही प्रमाणात कमी असते. परिणामी बाजारातील मिळणारी किंमत कमी होऊन शेतकऱ्यांचे नुकसान होऊ शकते. काही शेतकऱ्यांना त्याचा प्रत्यक्ष अनुभव आलेला आहे. फार थोड्या ग्राहक वर्गाला सेंद्रिय शेतीचे महत्त्व समजलेले आहे. असा ग्राहक वर्ग ज्यादा किंमत देऊन शेतमाल खरेदी करतो त्यामुळे इतर शेतकऱ्यांचे आर्थिक नुकसान होते सेंद्रिय पद्धतीने पिकांचे उत्पादन घेऊनहि आर्थिक नुकसान सहन करावे लागते.

सेंद्रिय शेतीसाठी आवश्यक आदाने

गोमूत्र, नैसर्गिक घटकापासून तयार झालेला पालापाचोळा, गांडूळ खत, कोंबडी खत, जनावरांचे शेण, द्विदल धान्यापासून तयार केलेली पेंड, इतर टाकाऊ पदार्थातून कुजलेले खत, हिरवळीचे खत, कुजलेल्या माशांपासून तयार केलेले खत, मृत जनावरांच्या हाडांपासून तयार केलेले खत, अशा खतांपासून सेंद्रिय खत तयार केले जाते. अशी खते मातीत पोषक मूल्य तयार करतात त्यामुळे नत्राचे स्थिरीकरण होऊन स्फुरद आणि पालाश ची स्थिती योग्य प्रमाणात राहते व जमिनीचा सातू टिकून राहण्यास मदत होते.

भारतातील सेंद्रिय शेतीची सद्यस्थिती

ऊस 24 %,	कडधान्य 20 %,
भात 24 %,	काजू 25%,
फळ भाजीपाला 17%,	मसाले 15%,
कापूस 8%,	कांदा ,टोमॅटो, बटाटा 15%
बाजरी 10%,	

वर्ष	मशागती खालील क्षेत्र (हे.)	उत्पादन (मे. टन)
२०१८-१९	१२४९८९.९	९८९२५५.०६
२०१९ - २०	२२२३६९.५५	२०४७५३५.९
२०२०- २१	१५९९०१०.०	३३९९५२०.२१

संदर्भ apeda.gov.in/apeda website/org.nic / data ntm २०२०-२१

महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, मध्यप्रदेश ,राजस्थान, हरियाणा, पंजाब उत्तराखंड, ओडीसा अशा राज्यांमध्ये सेंद्रिय उत्पादन वाढत चाललेली आहेत मात्र एकूण उत्पादनाच्या केवळ २ ते ३%उत्पादन सेंद्रिय पद्धतीने घेतले जाते.

राज्यनिहाय सेंद्रिय उत्पादन

राज्य	सेंद्रिय उत्पादन (मे. ट.)
कर्नाटक	१४४६
तामिळनाडू	८८६५२४३
गुजरात	१९४८३.३१

©Copyright 2024 ADRJ. All Rights Reserved

मध्य प्रदेश	२१८३४.३०
महाराष्ट्र	५३२८.१८
राजस्थान	३१०५.४२
पंजाब	१६०४२.२७
उत्तरांचल	३७०८.८३
ओडिसा	१९४०६.६४
इतर राज्य	२०१८१.४६
एकूण उत्पादन	१९२३२२९.२८

संदर्भ -NC of annual Report. २०- २१

सेंद्रिय उत्पादनात तामिळनाडू, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, ओडिसा अशी राज्य आघाडीवर असून इतर राज्यांमध्ये फारशी प्रगती झाल्याचे दिसत नाही. वरील तक्त्यातील मोजकी राज्य एकूण सेंद्रिय उत्पादनाच्या ८९.५०% उत्पादन घेतात तर इतर उर्वरित राज्य केवळ १०.४९% उत्पादन घेतात शेती उत्पादनात प्रगत असणाऱ्या राज्यांमध्ये प्रगत असणाऱ्या राज्यांमध्ये सेंद्रिय पद्धतीने अन्नधान्य, फळे, भाजीपाला अशी पिके घेतली जात आहेत. ज्या राज्यांमध्ये शेतीपूरक वातावरण नाही अशा राज्यात सेंद्रिय शेतीच्या फारसा विचार केला जात नाही.

महाराष्ट्रासारख्या शेतीप्रधान राज्यात नैसर्गिक शेतीला प्रोत्साहन मिळत आहे. महाराष्ट्र सरकारच्या मदतीने परंपरागत कृषी विकास योजना(PKKY)आणि पंजाबराव देशमुख सेंद्रिय शेती अभियान(PDOFEM) योजना राबवल्या जातात या योजनेअंतर्गत अनेक सुविधा आणि अनुदाने शेतकऱ्यांना दिली जातात. संपूर्ण राज्य पातळीवर महाराष्ट्र ऑरगॅनिक फार्मिंग फेडरेशन (MOFF)ची स्थापना करण्यात आलेली आहे. कापूस, तांदूळ,गहू, ऊस, हरभरा या महत्त्वाच्या नगदी पिकांसाठी(www.fao.org.in) सुभाष पालेकर यांच्या मदतीने शेतकऱ्यांसाठी सातत्याने संबंधित योजना राबवल्या जातात. पुण्याजवळील मुळशी या ठिकाणी अभिनव ग्रुपच्या मदतीने गोमुत्राच्या मदतीने काही औषधे आणि खते तयार केली जात आहेत. नागपूर जवळील भागात Two Brothers ही कंपनी विक्री व्यवस्थेचे आणि प्रशिक्षण वर्ग चालविण्याचे कार्य करते.

महाराष्ट्रात सह्याद्री फार्मचे कार्य नाशिक जिल्ह्यातील दिंडोरी तालुक्यातील मोहाडी या गावांमध्ये मोठ्या प्रमाणावर वाढलेले आहे १८,००० शेतकरी जोडले आहेत. २५२ खेड्यांमध्ये ३३,००० शेतकरी नैसर्गिक पद्धतीने शेतमाल उत्पादित करतात. २०१० मध्ये सुरू झालेली ही कंपनी ४२ पेक्षा जास्त देशात शेतीमाल निर्यात करते. (www.sshyandrifarms.com)
कृषीवेद ऑरगॅनिक फार्म ही कंपनी गुळ, भाजीपाला, खाद्यतेल नैसर्गिक पद्धतीने तयार करून विक्री करते. (www.krishivedofarm.in) तसेच अभिनव फार्म, शेतसार्थि मार्केट, भूमी फार्म, अशा अनेक कंपन्या नैसर्गिक उत्पादनाची विक्री करत आहेत.

सेंद्रिय शेती उत्पादना पुढील समस्या

हवामानात सातत्याने होत असलेल्या बदलामुळे कीड नियंत्रण आटोक्यात येत नाही. परिणामी उत्पादनात घट होण्याची शक्यता असते नैसर्गिक पद्धतीने किड नियंत्रण आणण्यासाठी पॉलिहाऊस सारखी सुविधा असणे आवश्यक आहे. मात्र अशी सुविधा खर्चिक असल्यामुळे सीमांत आणि मध्यम आकार असणाऱ्या शेत जमिनीत अशी सुविधा निर्माण करणे शक्य होत नाही परिणामी शेतकरी वर्गाला रासायनिक औषधांचा वापर करावा लागतो. सेंद्रिय खतांच्या किमती रासायनिक खतांपेक्षा अधिक आहेत परिणामी उत्पादन खर्च वाढत जातो त्यामुळे रासायनिक खतांचा वापर ज्यादा प्रमाणात केला जातो.

सेंद्रिय उत्पादन पातळी कमी असल्याने योग्य किंमत न मिळाल्यास शेतकऱ्यांचे आर्थिक नुकसान होते. अद्यापही सेंद्रिय उत्पादनाला उत्पादनाच्या आणि उत्पादन खर्चाच्या प्रमाणात किंमत मिळत नाही. परिणामी शेतकरी सेंद्रिय शेतीचा फारसा विचार करतो असे दिसत नाही. नैसर्गिक शेती करत असताना श्रमिक वर्गाची जादा प्रमाणात आवश्यकता असते. श्रमिकांचे वेतन वाढत चाललेले आहे मात्र उत्पन्न मिळण्याची निश्चिती नसल्यामुळे सेंद्रिय शेतीच्या समस्या वाढत चाललेले आहेत.

सेंद्रिय उत्पादन विक्री कंपन्या महाराष्ट्रात वाढत आहेत मात्र मोठ्या प्रमाणात शेतमालाची निर्मिती झाल्यास विक्री व्यवस्थेची समस्या निर्माण होते. सर्व शेतमाल अशा विक्री कंपन्या खरेदी करण्यास नकार देतात अथवा नगन्य दराने अशा शेतमालाची खरेदी करतात. परिणामी शेतमाल उत्पादित शेतकऱ्यांचे आर्थिक नुकसान होते केंद्रीय पातळीवर अपेंडा सारखी सार्वजनिक संस्था निर्यातीसाठी मदत करते मात्र निर्यात धोरणात सरकार सातत्याने बदल करते परिणामी निर्यातीची निश्चिती नसते त्यामुळे ही नैसर्गिक उत्पादनाचा फारसा विचार शेतकरी करत नाहीत. शेतमाल विक्री व्यवस्थेसाठी पायाभूत सुविधांची कमतरता आहे नाशवंत भाजीपाला फळे, फळवर्गीय भाजीपाला यांचे विक्री होईपर्यंत १०% ते १५% नुकसान होते त्यासाठी जलद वाहतूक सुविधा, वातानुकूलित वाहतूक सुविधा आवश्यक असतात मात्र त्या मिळत नसल्यामुळे शेतकऱ्यांचे आर्थिक नुकसान होते.

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4 September-October 2025 / VOL -02 ISSUE-II

भारतासारख्या कृषी प्रधान देशात अध्यापही शेती क्षेत्रात मागणी पुरवठा सातत्य दिसून येत नाही. सरकारचे किमतीवर नियंत्रण असते मात्र पुरवठा जादा झाल्यास त्याचे व्यवस्थापन केले जात नाही परिणामी शेतकऱ्यांचे नुकसान होते असे नुकसान झाल्यास सरकार कोणतीही आर्थिक मदत करत नाही त्यामुळे ही शेतकरी सेंद्रिय शेतीकडे दुर्लक्ष करतात. उत्पादन वाढीसाठी GM प्रकारातील बियाणे आणि रोपांची आवश्यकता असते मात्र काही तज्ञांचा अशा बियाणे आणि लोकांना विरोध आहे परिणामी उत्पादकता घटली जाते. परंपरागत बी बियाणे वापरल्यामुळे उत्पादनातील वाढ नगन्य असते आणि अशी बियाणे आणि रोपांची रोग प्रतिकारशक्ती कमी असते.

पर्यावरणीय समस्या दिवसेंदिवस वाढत चालली आहे. बदलत्या हवामानामुळे रोग आणि किडींचे प्रमाण वाढत आहे. परिणामी सेंद्रिय उत्पादन करणे बहुसंख्य शेतकऱ्यांना शक्य होत नाही. सेंद्रिय उत्पादने घेण्यासाठी तांत्रिक सहाय्याची मोठ्या प्रमाणावर गरज असते तंत्रज्ञान खर्च करण्यात सामान्य आणि मध्यम शेतकरी असे तंत्रज्ञान वापरू शकत नाही. यामुळेही सेंद्रिय उत्पादन कमी प्रमाणात घेतली जातात.

सेंद्रिय उत्पादने वाढविण्यासाठी उपाय योजना

शेतकरी सेंद्रिय शेतीकडे वळविण्यासाठी उच्च तांत्रिक सहाय्य मिळवून दिले जावे. सरकार आणि CSR फंडातून अशा सुविधा उभारल्या जाव्यात. उदा. शेडनेट, सेन्सर, तंत्रज्ञान अशा सुविधा या निधीतून उभारल्या जाव्यात. सेंद्रिय खते आणि औषधे यांच्या किमती मर्यादित असाव्यात ज्यादा किमतीमुळे अशा अदानांचा वापर कमी प्रमाणात केला जातो. अथवा शासन यंत्रणेच्या माध्यमातून तांत्रिक साहय्य पुरवले जावे.

प्रदूषण कमी झाल्यास कीड नियंत्रण काही प्रमाणात नियत्रणात येईल मात्र सध्या परिस्थितीत ते शक्य नाही. परिणामी सेंद्रिय शेतीकडे शेतकरी दुर्लक्ष करत आहेत. हवा प्रदूषण कमी झाल्यास कीटकनाशकांचा वापर कमी करावा लागतो.

शेतकऱ्यांना एकात्मिक किड नियंत्रण योजना राबवावी लागेल मात्र उत्पादन आणि उत्पादनाला मिळणारी किंमत निश्चित नसल्यामुळे एकत्रित पीक पद्धती राबवली जात नाही त्यामुळे पीक व्यवस्थापन खर्च वाढत जातो. त्यामुळे सेंद्रिय शेतीकडे शेतकरी सध्या दुर्लक्ष करत आहेत. शेतकरी आर्थिक दृष्टीने पीक पद्धतीत फेरबदल करत नाही आलटून पालटून पीक पद्धती घेतल्यास जमिनीची सुपीकता टिकून राहते आणि उत्पादन खर्च कमी होतो मात्र कमी आर्थिक लाभाच्या पिकाकडे शेतकरी दुर्लक्ष करतात. एकाच प्रकारची पिके घेतल्याने जमिनीचा पोत कमी होतो व रासायनिक खते आणि कीटकनाशकांचा वापर ज्यादा प्रमाणात केला जातो. पिके आलटून पाठवून घेतल्यास नैसर्गिक शेतीच्या दिशेने जाणे शक्य होईल. शेतकऱ्यांनी सहकार्य दृष्टिकोनातून शेती व्यवसायाकडे वळणे गरजेचे आहे. सामुदायिक उत्पादन घेतल्यास आदानांचा खर्च कमी होण्यास मदत होईल शिवाय अशा गटाला तांत्रिक सहाय्य मिळविणे शक्य होईल. तांत्रिकता आणि सहकाराचा सुवर्णमध्ये साधण्यास नैसर्गिक शेती क्षेत्रामध्ये वाढ करणे शक्य होईल.

सारांश

सेंद्रिय शेती ही काळाची गरज आहे मात्र त्याचा १००% वापर करणे सध्या स्थितीत शक्य नाही. अल्पभूधारक, सीमांत, मध्यम जमीन असणारे शेतकरी आर्थिक अडचणीतून वाटचाल करत आहेत. अशा परिस्थितीत सेंद्रिय उत्पादकतात त्यांना घेणे शक्य होणार नाही.

कमी किमतीत पॉलिहाऊस आणि ग्रीन हाऊस सुविधा उपलब्ध केल्या जाव्यात अशा हाऊसमध्ये नैसर्गिक पद्धतीने उत्पादन घेणे शक्य होणार आहे. आधुनिक बी-बीयाने आणि नैसर्गिक खतांची व औषधांची कमी किमतीत उपलब्धता केली पाहिजे. माती परीक्षणानुसार पीक पद्धतीची निवड केली पाहिजे. उत्पादन खर्चानुसार किंमत मिळविण्याची यंत्रणा उभी केली पाहिजे. स्थानिक राष्ट्रीय आणि आंतरराष्ट्रीय बाजारपेठांमध्ये अशा शेतमालाला बाजारपेठ किफायतशीर किमतीत उपलब्ध करून दिली पाहिजे. अशा उपाययोजना केल्यास नैसर्गिक शेती करणे किफायतशीर होईल आणि विषमुक्त सकस आहार घेणे मागणी समुदायाला शक्य होईल.

संदर्भ

१. globalfuture.ash.edu
२. nconf.dac.gov.in
३.www.khetivyapar.com/en/organic-farming.sustainable
४. https:/incont.dac.gov.in
५. Business line 1 Nov. 2024
६. The Hindu 4 Nov. 2024
७. Indian Express 27Dec. 2024
८. Krishi Jagran 7th Feb. 2025

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4 September-October 2025 / VOL -02 ISSUE-II

12

हिंदी साहित्य में आदिवासी संस्कृति की भूमिका

डॉ. नमिता गोस्वामी
मार्गदर्शक, सहायक प्राध्यापक (विभागाध्यक्ष)
जय मीनेश आदिवासी विश्वविद्यालय, रानपुर, कोटा

प्रियंका बाफना
शोधार्थी
जय मीनेश आदिवासी विश्वविद्यालय, रानपुर, कोटा

भूमिका

भारत विविधताओं का देश है – यहाँ भाषा, धर्म, वेशभूषा, खानपान, और परंपराओं में अपार भिन्नता होने पर भी एक गहरी सांस्कृतिक एकता विद्यमान है। इसी विविधता के बीच आदिवासी संस्कृति का स्वरूप अत्यंत प्राचीन और मूल है। भारतीय जनजातियाँ देश की लगभग 8: जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती हैं और इनका जीवन, विचार, और संस्कृति भारतीय सभ्यता के मूल तत्वों को अभिव्यक्त करते हैं। आदिवासी संस्कृति भारतीय संस्कृति की जड़ है। यह संस्कृति न केवल मानव और प्रकृति के बीच संतुलन की बात करती है, बल्कि समाज में समानता, सह–अस्तित्व और परस्पर सहयोग का संदेश देती है। आधुनिक युग में जब भौतिकता और उपभोक्तावाद ने मनुष्य को प्रकृति से दूर कर दिया है, तब आदिवासी संस्कृति हमें एक वैकल्पिक जीवन–दर्शन प्रदान करती है – जो "प्रकृति के साथ जीना" सिखाती है, "उस पर अधिकार" नहीं। हिंदी साहित्य ने इस संस्कृति को न केवल पहचान दी, बल्कि उसे अभिव्यक्ति का माध्यम भी बनाया। आदिवासी लोकगीत, मिथक, और परंपराएँ हिंदी लेखकों के लिए सृजनात्मक प्रेरणा रही हैं। स्वतंत्रता–उत्तर काल में जब साहित्य में हाशिए के वर्गों की आवाज उठी, तब आदिवासी संस्कृति के विमर्श को भी नया आयाम मिला। आदिवासी समाज ने प्रकृति के साथ सहअस्तित्व का जो आदर्श प्रस्तुत किया है, वह आज के औद्योगिक युग में अत्यंत प्रासंगिक हो उठता है। भारत को यदि 'संस्कृतियों का देश' कहा जाए तो यह कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। यहाँ की प्रत्येक जनजाति अपनी भाषा, परिधान, लोककला, रीति–रिवाज और आस्थाओं में विशिष्ट है।

आदिवासी संस्कृति की संकल्पना और विशेषताएँ

'आदिवासी' शब्द संस्कृत के 'आदि' (प्रथम) और 'वासी' (निवासी) से मिलकर बना है, जिसका अर्थ हैकृ"भूमि के मूल निवासी"। आदिवासी संस्कृति का आधार प्रकृति, श्रम, और सामूहिकता पर टिका है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं

प्रकृति–आश्रित जीवनदर्शन

लोककला और लोकगीतों की समृद्ध परंपरा
मातृसत्तात्मक तत्वों की उपस्थिति
सामूहिक श्रम और उत्सवधर्मिता
अपनी भाषा और रीति–रिवाजों की मौलिकता

यह संस्कृति औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के दबाव में धीरे–धीरे संकट में आई है, किंतु साहित्य ने इसके अस्तित्व को शब्दों में अमर बना दिया है।

आदिवासी संस्कृति की संकल्पना

'आदिवासी' शब्द संस्कृत के 'आदि' (प्रथम) और 'वासी' (निवासी) से मिलकर बना है – अर्थात् जो किसी भूभाग के मूल निवासी हैं। भारत के संविधान में अनुसूचित जनजातियों को आदिवासी कहा गया है, जिनकी सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भिन्न, किंतु अत्यंत समृद्ध है।

'संस्कृति' शब्द संस्कृत के 'संस्कृत' धातु से बना है, जिसका अर्थ है दृ शुद्ध, विकसित और परिष्कृत आचरण। अतः आदिवासी संस्कृति का तात्पर्य उन परंपराओं, मान्यताओं और जीवन–प्रणालियों से है, जिन्हें आदिवासी समाज ने पीढ़ियों से अपनाया और संरक्षित रखा है।

हिंदी साहित्य में आदिवासी जीवन का चित्रण

1. प्रारंभिक हिंदी साहित्य में संकेत

आदिवासी समाज का संकेत प्रारंभिक हिंदी साहित्य में भी मिलता है। लोककथाओं, लोकगीतों, और भोजपुरी, बुंदेली, छत्तीसगढ़ी जैसे क्षेत्रीय साहित्य में वनवासियों, भीलों, गोंडों और संथालों का उल्लेख आता है।

रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथों में भीलनी शबरी का प्रसंग आदिवासी संस्कृति की आदर्श मानवता का प्रतीक है। हिंदी कवियों ने इस सांस्कृतिक मूल्य को अपनाया और लोकधारा से जोड़ा।

2. आधुनिक हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श का उद्भव

©Copyright 2024 ADRJ. All Rights Reserved

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4 September-October 2025 / VOL -02 ISSUE-II

आधुनिक युग में, विशेषकर स्वतंत्रता के बाद, साहित्य में यथार्थवाद और सामाजिक सरोकार बढ़े। अब लेखकों ने ग्रामीण और आदिवासी जीवन के संघर्षों को केंद्र में रखा।

(क) कविता में आदिवासी चेतना

आदिवासी कवियों ने अपनी संस्कृति को प्रतिरोध और पहचान के रूप में व्यक्त किया।

रामधारी सिंह दिनकर की कविता "हिंदी की आत्मा" में जनजीवन और लोक संस्कृति का गौरव देखा जा सकता है।

दुर्गा प्रसाद नायडू, जयप्रकाश कर्दम, और समकालीन कवि निलय उपाध्याय आदि ने आदिवासी संवेदनाओं को नई दिशा दी।

(ख) कथा साहित्य में आदिवासी जीवन

फणीश्वरनाथ रेणु की रचनाओं में, विशेषतः "मैला आँचल" में, ग्रामीण और अंचलीय जीवन के साथ आदिवासी समाज की छाया मिलती है।

महाश्वेता देवी (यद्यपि बंगला लेखिका थीं, किंतु हिंदी में अनूदित रचनाओं ने बड़ा प्रभाव डाला) – उनकी कहानियाँ "द्रौपदी", "अरण्येर अधिकार", "पद्मश्री", आदि आदिवासी प्रतिरोध की सशक्त अभिव्यक्तियाँ हैं।

रणेन्द्र का उपन्यास "ग्लोबल गाँव के देवता" आदिवासी जीवन पर वैश्वीकरण के दुष्प्रभाव को दिखाता है।

नीलमणि मुक्ता, महेंद्र भील, सुभाषचंद्र कुशवाहा आदि ने भी आदिवासी संस्कृति के संघर्षों को साहित्य में प्रमुखता दी है।

(ग) नाटक और लोकरंग में अभिव्यक्ति

हिंदी नाट्यकर्म में भी आदिवासी संस्कृति का रंग दिखाई देता है। "धरती अब भी घूम रही है" (विजयदान देथा), "पारो" (महाश्वेता देवी का रूपांतर), और लोकनाट्य परंपराएँ आदिवासी संवेदना की प्रस्तुति करती हैं।

लोकनाट्य जैसे नाचा, पांडवानी, झोड़ा–चाँचरी, छऊ नृत्य आदि आदिवासी लोककला के जीवंत उदाहरण हैं जिन्हें हिंदी साहित्य ने अपनाया और रूपांतरित किया।

आदिवासी संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ

1. प्रकृति–आश्रित जीवन–दर्शन

आदिवासी संस्कृति की सबसे प्रमुख विशेषता है – प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व।

जंगल, नदी, पर्वत, पशु–पक्षी, धरती और आकाश उनके जीवन के अभिन्न अंग हैं।

वे प्रकृति को पूज्य मानते हैं, न कि उपभोग की वस्तु।

उदाहरणार्थ, गोंड, भील, संथाल, उरांव आदि जनजातियों में वृक्ष–पूजन, नदी–पूजन और पर्वत–पूजन की परंपरा आज भी प्रचलित है।

उनकी लोककथाओं, गीतों और नृत्यों में धरती और प्रकृति का गौरव गाया जाता है।

उनके त्यौहार जैसे – सरहुल, कर्मा, करम, बिंधा, और माघी – सभी ऋतुओं और कृषि से जुड़े होते हैं।

2. लोककला और लोकसंगीत की परंपरा

आदिवासी संस्कृति का एक महत्वपूर्ण पहलू है – लोककला और संगीत। उनके नृत्य जैसे छऊ, गोंडी, झोड़ा, सरहुल नृत्य, करमा नृत्य आदि न केवल मनोरंजन हैं बल्कि सामुदायिक एकता और प्रकृति के साथ तालमेल का प्रतीक हैं। लोकसंगीत में बाँसुरी, ढोल, मांदर, और नगाड़े प्रमुख वाद्य हैं। उनकी कलाओं में प्राकृतिक रंगों, मिट्टी, लकड़ी, और धातु का प्रयोग किया जाता है। मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड और उड़ीसा की आदिवासी मूर्तिकला और चित्रकला विश्वप्रसिद्ध है – जैसे गोंड आर्ट और पिथोरा पेंटिंग।

3. धर्म और आस्था की मौलिकता

आदिवासी धर्म प्राकृतिक धर्म है। वे ईश्वर की मूर्त कल्पना की बजाय प्रकृति की शक्तियों की उपासना करते हैं। उनकी देवता–संस्था स्थानीय और सामूहिक होती है, जैसे – "धरती माई", "वनदेव", "जलदेवता", "पितृदेव" आदि। उनकी धार्मिकता में भय नहीं, कृतज्ञता का भाव होता है। वे प्रकृति की कृपा के लिए धन्यवाद स्वरूप पूजा करते हैं, न कि दंड के भय से। यह धार्मिकता वैज्ञानिक दृष्टि से भी टिकाऊ और पर्यावरण–संरक्षक है।

4. सामूहिकता और सह–अस्तित्व की भावना

आदिवासी समाज का मूल तत्व 'सामूहिकता' है। यह समाज व्यक्तिवाद की बजाय सामूहिक जीवन पर आधारित है। ग्रामसभा या 'पंच' की परंपरा उनके समाज की न्यायिक और सामाजिक इकाई है। निर्णय सामूहिक रूप से लिए जाते हैं, जिससे सामाजिक एकता बनी रहती है। उनके गीत, नृत्य और त्यौहार भी सामूहिक होते हैं – हर व्यक्ति सहभागिता करता है। इससे उनका सामाजिक बंधन दृढ़ होता है और समाज में समानता का भाव प्रबल रहता है।

5. श्रमप्रधान संस्कृति

©Copyright 2024 ADRJ. All Rights Reserved

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4 September-October 2025 / VOL -02 ISSUE-II

आदिवासी समाज में श्रम को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। खेती, वनोपज–संग्रह, मत्स्य–पालन, बुनाई, लकड़ी–कला आदि उनका प्रमुख आजीविका स्रोत हैं। उनकी मेहनत में कला और संस्कृति दोनों झलकती हैं। आदिवासी समाज में श्रम का कोई वर्गीय विभाजन नहीं होता– स्त्री–पुरुष, दोनों समान रूप से श्रम करते हैं। श्रम को वे पूजा का रूप मानते हैं और इसी से उनके जीवन में आत्मनिर्भरता आती है।

6. उत्सवधर्मिता और आनंद का भाव

आदिवासी जीवन त्यौहारों और उत्सवों से परिपूर्ण है। उनके प्रत्येक पर्व में संगीत, नृत्य, और सामूहिक भोज का आयोजन होता है। यह उत्सव केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सामाजिक बंधन को सुदृढ़ करने का माध्यम है। उनके पर्व प्रकृति और कृषि चक्र से जुड़े होते हैं – जैसे सरहुल वसंत ऋतु में, कर्मा फसल पकने पर, और माघी वर्षांत में मनाया जाता है।

7. मौखिक परंपरा और कथा–कहानी

आदिवासी संस्कृति में मौखिक परंपरा अत्यंत समृद्ध है। वे अपने इतिहास, वीरता, और जीवन मूल्यों को लोककथाओं, गीतों और नृत्यों के माध्यम से जीवित रखते हैं। यह मौखिक परंपरा उनकी पहचान की वाहक है और आधुनिक लेखन से पहले की साहित्यिक धरोहर कही जा सकती है।

8. स्त्री की गरिमा और समानता

आदिवासी समाज में स्त्रियों की स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर रही है। स्त्री–पुरुष दोनों आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक कार्यों में समान भागीदारी रखते हैं। विवाह, संपत्ति, और निर्णय प्रक्रिया में स्त्रियों की स्वतंत्र भूमिका होती है।

उनका परिधान, आभूषण और नृत्य उनके आत्म–सम्मान का प्रतीक है। कई जनजातियों में स्त्री के नाम पर संपत्ति का उत्तराधिकार भी मिलता है –जो भारतीय समाज में दुर्लभ उदाहरण है।

9. लोकज्ञान और पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली

आदिवासी संस्कृति में लोकज्ञान का भंडार है। वनस्पति, औषधि, कृषि, जल–संरक्षण, और पशुपालन से जुड़ी जानकारी पीढ़ी–दर–पीढ़ी मौखिक रूप में संचित रही है। उनके "वैद्य" या "ओझा" पारंपरिक ज्ञान के माध्यम से रोगों का उपचार करते हैं। आज जब आयुर्वेद और जैवविविधता पर शोध हो रहे हैं, तब यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी संस्कृति ने हजारों वर्ष पहले ही प्रकृति आधारित चिकित्सा प्रणाली को विकसित किया था।

10. आधुनिकता और परिवर्तन

आधुनिकता ने आदिवासी संस्कृति पर गहरा प्रभाव डाला है। खनन, उद्योग, और विस्थापन ने उनके पारंपरिक जीवन को झकझोरा है। कई जनजातियाँ अपनी भूमि, भाषा और संस्कृति से वंचित हो रही हैं। फिर भी, शिक्षा और सामाजिक चेतना के बढ़ने से आदिवासी समाज अब अपनी पहचान के लिए संघर्षरत है। आधुनिक आदिवासी साहित्य, लोककला और संगीत इस परिवर्तन के प्रतीक हैं।

हिंदी साहित्य में आदिवासी संस्कृति के प्रमुख आयाम

- प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व – आदिवासी साहित्य में धरती, जंगल, नदियाँ, और पशु–पक्षी मानवीय संबंधों की तरह प्रस्तुत होते हैं।
- श्रम और स्वावलंबन – साहित्य में आदिवासी चरित्र श्रमशील, आत्मनिर्भर और सामूहिकता के प्रतीक हैं।
- संघर्ष और शोषण – भूमिहीनता, विस्थापन, खनन, और वन–अधिकारों से जुड़ी समस्याएँ हिंदी उपन्यासों और कहानियों का प्रमुख विषय बनीं।
- स्त्री विमर्श से संबंध – आदिवासी स्त्रियों की स्वतंत्रता और संघर्षशीलता को महाश्वेता देवी, मृदुला गर्ग, और मनीषा कुलश्रेष्ठ जैसी लेखिकाओं ने प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया।
- लोकजीवन और उत्सवधर्मिता – आदिवासी जीवन के त्यौहार, नृत्य, गीत, और लोककला को हिंदी साहित्य ने लोकसंस्कृति के विस्तार के रूप में देखा।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में आदिवासी संस्कृति का महत्व

- यह पर्यावरण संरक्षण की वास्तविक शिक्षा देती है।
- यह भौतिकता के बजाय संतुलित जीवन की प्रेरणा देती है।
- यह समानता और लोकतंत्र के मूल मूल्यों को स्थापित करती है।
- यह विविधता में एकता का आदर्श प्रस्तुत करती है।
- यह आधुनिक विकास मॉडल के विकल्प के रूप में "सतत् जीवन पद्धति" को प्रस्तुत करती है।

आदिवासी विमर्श और समकालीन हिंदी साहित्य

21वीं सदी में 'आदिवासी विमर्श' एक सशक्त साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप में उभरा है। यह विमर्श केवल करुणा नहीं, बल्कि प्रतिरोध की आवाज है।

रणेन्द्र, चित्रा मुद्गल, अनामिका, महेंद्र भील जैसे लेखक आदिवासी जीवन को केंद्र में रखकर अपनी रचनाओं में नई दृष्टि प्रस्तुत करते हैं।

समकालीन कविता में आदिवासी कवियों का उभरना इस बात का संकेत है कि अब वे स्वयं अपनी संस्कृति के प्रतिनिधि बन रहे हैं, न कि केवल विषय।

सोशल मीडिया और छोटे प्रकाशन समूहों के माध्यम से आदिवासी साहित्य आज मुख्यधारा में अपनी पहचान बना रहा है।

हिंदी साहित्य में आदिवासी संस्कृति की उपयोगिता और प्रासंगिकता

हिंदी साहित्य में आदिवासी संस्कृति की भूमिका केवल विषयगत नहीं, बल्कि वैचारिक भी है। इसने –

- मानवता, सामूहिकता, और प्रकृति–प्रेम के मूल्य पुनः स्थापित किए।
- हाशिए के समाजों को साहित्य में स्थान दिया।
- आधुनिकता के अंधाधुंध विकास मॉडल पर प्रश्न उठाए।
- 'समानता' और 'अस्तित्व' के विमर्श को नया आधार दिया।

इस प्रकार, आदिवासी संस्कृति हिंदी साहित्य में न केवल विषय बनकर आई, बल्कि उसने साहित्य को अधिक मानवीय, जनोन्मुख और यथार्थवादी बनाया।

निष्कर्ष

आदिवासी संस्कृति केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की दिशा है। इस संस्कृति में मानवता, प्रकृति, सामूहिकता और श्रम के जो मूल्य निहित हैं, वे आधुनिक समाज के लिए मार्गदर्शक बन सकते हैं। यह संस्कृति हमें सिखाती है कि विकास का अर्थ केवल औद्योगिक प्रगति नहीं, बल्कि जीवन का संतुलन और सामंजस्य है। आदिवासी संस्कृति की विशेषताएँ – जैसे प्रकृति–प्रेम, श्रम, समानता, और आनंद – आज भी समाज को मानवीयता की ओर लौटने का आह्वान करती हैं। यदि भारत अपनी मूल आत्मा को पहचानना चाहता है, तो उसे आदिवासी संस्कृति की संवेदना को समझना और सम्मान देना होगा। हिंदी साहित्य में आदिवासी संस्कृति की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। इस संस्कृति ने हिंदी साहित्य को विविधता, संवेदना, और यथार्थ के नए आयाम दिए। आदिवासी समाज की जीवनशैली, लोककला, लोकगीत, और उनकी संघर्षशीलता साहित्य को एक नई दिशा प्रदान करती है। आज जब वैश्वीकरण, शहरीकरण और पूँजीवाद के दबाव में पारंपरिक जीवन–पद्धतियाँ मिटती जा रही हैं, तब आदिवासी संस्कृति हमें स्मरण कराती है कि मानवता का मूल स्वर प्रकृति के साथ सामंजस्य और सामूहिकता में निहित है। हिंदी साहित्य इस संस्कृति का न केवल साक्षी रहा है, बल्कि उसका संरक्षक और संवाहक भी है।

संदर्भ ग्रंथ

1. नीलमणि मुक्ता – आदिवासी कथा–साहित्य की दृष्टि, भोपालरू भारतीय जनजातीय शोध संस्थान।
2. पटेल, महेश – गोंड कला और आदिवासी चित्रकला, मध्यप्रदेश कला परिषद, भोपाल।
3. रेणु, फणीश्वरनाथ – मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. महाश्वेता देवी – अरण्येर अधिकार, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।
5. आचार्य, रमेशचंद्र – भारतीय लोक परंपरा और आदिवासी जीवन, सारस्वत प्रकाशन, वाराणसी।
6. चौबे, शरद – आदिवासी विमर्श और आधुनिकता, लोक संस्कृति शोध केंद्र, रायपुर।
7. नीलमणि मुक्ता – आदिवासी कथा साहित्य की दृष्टि, साहित्य आजतक, भोपाल।
8. सिंह, रमाशंकर – हिंदी साहित्य में आदिवासी जीवन का चित्रण, प्रयाग प्रकाशन, इलाहाबाद।
9. मिश्रा, कमल – आदिवासी विमर्श और हिंदी उपन्यास, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली।
10. झा, देवेंद्र कुमार – लोकसंस्कृति और हिंदी साहित्य, लोकभारती, इलाहाबाद।
11. तिवारी, नामवर सिंह – कहानी नई कहानी, राजकमल प्रकाशन।
12. रणेंद्र – ग्लोबल गाँव के देवता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
13. हरिशंकर परसाई – भाषा और जीवन, लोकभारती प्रकाशन।
14. शाह, गणेश देवी – आदिवासी संस्कृतियों की परंपरा और संकट, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।
15. देवी, महाश्वेता – अरण्येर अधिकार, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।
16. गणेश एन. देवि – आदिवासी संस्कृतियों की परंपरा और संकट, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।
17. सिंह, रमाशंकर – आदिवासी संस्कृति और लोकजीवन, प्रयाग प्रकाशन, इलाहाबाद।
18. मिश्रा, कमल – भारतीय जनजातियाँ और उनका संस्कृति–दर्शन, लोकभारती, इलाहाबाद।
19. झा, देवेंद्र कुमार – भारतीय लोकसंस्कृति का समाजशास्त्र, साहित्य भवन, नई दिल्ली।

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4 September-October 2025 / VOL -02 ISSUE-II

13

पत्थलगढ़ी: आदिवासी अस्मिता और प्रतिरोध का स्वर - एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रा.डॉ. नवनाथ गोरक्षनाथ भोंदे
पेमराज सारडा महाविद्यालय, अ.नगर

भारत के आदिवासी समाज ने अपने सांस्कृतिक अस्तित्व और आत्मनिर्णय के अधिकार की रक्षा के लिए सदियों से संघर्ष किया है। पत्थलगढ़ी इस संघर्ष की एक सशक्त अभिव्यक्ति है, जिसमें आदिवासी समुदाय अपने पूर्वजों की परंपराओं और सांस्कृतिक मूल्यों को सुरक्षित रखते हुए अपनी अस्मिता का प्रमाण प्रस्तुत करता है। पत्थलगढ़ी न केवल एक सांस्कृतिक प्रतीक है, बल्कि यह भूमि, जल और जंगल पर अधिकार की पुनःस्थापना का घोषणापत्र भी है। अनुज लुगुन का काव्य संग्रह 'पत्थलगढ़ी' इसी आदिवासी चेतना और प्रतिरोध के स्वर को प्रकट करता है। उनकी कविताएँ आदिवासियों के अनुभवों, संघर्षों और आत्मसम्मान की कहानियाँ कहती हैं। इन रचनाओं में ऐतिहासिक अन्यायों, सांस्कृतिक दमन और सत्ता की नीतियों के विरुद्ध जनप्रतिरोध की भावना झलकती है। साथ ही आदिवासी समाज की अस्मिता, प्रतिरोध और संघर्ष को विश्लेषित किया गया है। इसके माध्यम से आदिवासी संस्कृति की जीवंतता, उनकी सामूहिक चेतना और अपने अधिकारों की रक्षा हेतु किए गए प्रयासों को समझने की कोशिश की गई है।

अनुज लुगुन की कविताएँ यह स्पष्ट करती हैं कि आदिवासी अस्मिता केवल जातीय या भौगोलिक पहचान नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक स्मृति और जीवनपद्धति है। यह अस्मिता प्रकृति से जुड़ी है – जंगल, नदी, चूल्हा, माँदल, भाषा और परंपरा के सह-अस्तित्व से बनी है।

"उन्होंने तो सिर्फ इतना ही कहा
कि पत्थर उनकी पहचान का प्रतीक है..."[1]

यहाँ 'पत्थर' स्थायित्व और परंपरा का द्योतक है, जिसे 'गाड़ना' अस्मिता की घोषणा है। आदिवासी समाज की आत्म-पहचान अपने प्राकृतिक व सांस्कृतिक परिवेश में रची-बसी है – जिसे बहुसंख्यकवादी राष्ट्रवाद अक्सर 'जंगली' या 'असभ्य' कह कर नकारता है। यह अस्मिता किसी कृत्रिम राजनीतिक पहचान पर नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, समुदायिक स्मृति और परंपरा के प्रतीकों पर आधारित है, जिसकी अभिव्यक्ति 'पत्थलगढ़ी' जैसे रचनात्मक आंदोलनों में देखी जा सकती है।

अनुज लुगुन की कविताओं में सत्ता के द्वारा किए जा रहे दमन और उससे उपजे प्रतिरोध की तीव्र चेतना है। 'मेरे गाँव में सीआरपीएफ कैम्प लग गया है' कविता में सत्ता की सैन्य उपस्थिति को लोकतंत्र के विपरीत एक हिंसात्मक कार्रवाई के रूप में देखा गया है:

"गाँव में 'सीआरपीएफ कैम्प लग गया है'
यह सामान्य कथन नहीं है..."[2]

यहाँ प्रतिरोध केवल भावनात्मक नहीं, वैचारिक और ऐतिहासिक है। कवि ताऊजी (नक्सली), चाचा (पुलिस अधिकारी) और स्वयं कवि — तीनों की उपस्थिति एक बहुस्तरीय आत्मसंघर्ष और सत्ता के चरित्र की आलोचना का अवसर देती है। यह प्रतिरोध वर्गीय, जातीय, और सांस्कृतिक रूप से जुड़ा हुआ है और लोक चेतना का रूप धारण करता है, जो सत्ता द्वारा थोपी गई 'राष्ट्रीयता' की संकीर्ण व्याख्या को चुनौती देता है।

कविता 'पत्थलगढ़ी' में यह कहा गया है कि:

"हिन्दी आदिवासियों की मातृभाषा नहीं है
...फिर भी वे पत्थर फेंकने के दोषी माने गये।"[3]

यहाँ भाषा एक सत्ता-औजार के रूप में सामने आती है, जो बहुल सांस्कृतिक आवाज़ों को दबाकर एकसांस्कृतिकता को थोपने का काम करती है। 'पत्थर फेंकना' मुख्यधारा की हिंसा की भाषा है, जबकि आदिवासी 'पत्थर गाड़ते' हैं – पहचान स्थापित करने के लिए। भाषा का वर्चस्व एक सांस्कृतिक नियंत्रण की प्रक्रिया है, जिसके खिलाफ यह काव्य एक आत्म-निवेदन और असहमति का साहित्यिक प्रतिरोध प्रस्तुत करता है।

कविता 'मुझे मेरी नागरिकता दे दो' में कवि केवल कागज़ी नागरिकता नहीं, एक मानवीय, गरिमामयी अस्तित्व की माँग करता है:

"मुझे मेरी जुबान आज़ाद दे दो
मुझे मेरी श्रमशील नागरिकता दे दो।"[4]

यह कविता उस लोकतंत्र की विफलता को उजागर करती है, जो अपने हाशिये के नागरिकों को केवल पहचान-पत्रों में सीमित कर देना चाहता है, न कि अधिकार, गरिमा और सामाजिक समावेशन में। यह प्रतिरोध भारतीय लोकतंत्र की आत्मा को पुनः परिभाषित करने का आह्वान करता है — जिसमें श्रम, भूमि, भाषा और संस्कृति के सम्मान को नागरिकता का आधार माना जाए।

©Copyright 2024 ADRJ. All Rights Reserved

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4 September-October 2025 / VOL -02 ISSUE-II

'पानी में घुसी औरतें', 'मेरी माँ और भेड़िए', 'परदे से गुम हो गयीं स्त्रियाँ' जैसी कविताएँ स्त्री को प्रतिरोध की अग्रणी भूमिका में स्थापित करती हैं। यह स्त्रियाँ जल-सत्याग्रह करती हैं, गुरिल्ला बनकर लड़ती हैं, और जंगल से अपने बच्चों की रक्षा करती हैं।

"कविता में यह बेतुकी बात हो सकती है
कि एक माँ रायफल चलाती है
लेकिन आलोचकों को यह बात स्वीकार करनी चाहिए।"[5]

स्त्री यहाँ सिर्फ भावनात्मक संरक्षक नहीं, सामाजिक यथार्थ की साक्षात अभिव्यक्ति है — जुझारू, जागरूक, और निर्णायक। कविता स्त्री के भीतर के उस प्रतिरोध को पहचानती है, जो पितृसत्तात्मक समाज में अदृश्य रखा जाता है। यह प्रतिरोध आत्मरक्षा, संस्कृति और न्याय तीनों स्तरों पर सक्रिय है।

'पचपन बरस की मज़दूरी', 'चाय बागान की अंग्रेज़ी मशीन', 'मज़दूरों की मौत का सदमा लाल किले को नहीं होता' — ये कविताएँ एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था की आलोचना हैं जिसमें पूँजी के लिए मनुष्य का श्रम शोषित होता है और पहचान खो जाती है।

"मज़दूरों की मौत का सदमा लाल किले को नहीं होता।"[6]

भूख और विस्थापन केवल आर्थिक संकट नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक और मानवीय त्रासदी है — जिसे राजनीतिक शुष्कता नज़रअंदाज़ कर देती है। कविता समाज के सबसे हाशियाई वर्गों के आर्थिक संघर्षों को एक सशक्त वैचारिक अभिव्यक्ति देती है, और सत्ता के संवेदनहीन रवैये को उद्घाटित करती है।

अनुज लुगुन की भाषा शिल्प नहीं, शस्त्र है। उनकी कविता किसी सौंदर्यशास्त्रीय बोध या अकादमिक मापदण्डों से बंधी नहीं है, बल्कि प्रतिरोध और असहमति की जीवंत वाणी है।

"तुमने भाषा की कुलीनता को ताक पर रखा
कविता को बताया लोहे की बेड़ियाँ तोड़ने वाला..."

उनकी कविता में व्याकरण नहीं, गुरिल्ला-युद्ध है। यह कविता केवल 'शब्दों की कला' नहीं, 'अर्थ का संघर्ष' है। अनुज लुगुन का काव्य-शिल्प एक वैकल्पिक साहित्यिक परंपरा को जन्म देता है, जिसमें कविता यथास्थिति को नहीं, बल्कि परिवर्तन की चेतना को अभिव्यक्त करती है।

अनुज लुगुन की 'पत्थलगढ़ी' एक शक्तिशाली दस्तावेज़ है, जो आदिवासी अस्मिता के साथ-साथ व्यापक जन-प्रतिरोध की सामाजिक-सांस्कृतिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। यह संग्रह एक वैकल्पिक इतिहास, वैकल्पिक नागरिकता और वैकल्पिक सौंदर्यशास्त्र की स्थापना करता है। कविता यहाँ 'शब्द' नहीं, 'संघर्ष' बन जाती है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अनुज लुगुन का '*पत्थलगढ़ी*' काव्य संग्रह केवल साहित्यिक कृति नहीं है, बल्कि यह आदिवासी अस्मिता और प्रतिरोध का जीवंत दस्तावेज़ है। उनकी कविताएँ समाज के वंचित और उपेक्षित समुदायों की आवाज़ बनती हैं, जो ऐतिहासिक अन्याय और समकालीन शोषण के खिलाफ अपनी उपस्थिति दर्ज कराती हैं। कवि ने आदिवासी समाज की पीड़ा, उनके संघर्ष और आत्मसम्मान की भावना को प्रभावी रूप में प्रस्तुत किया है। पत्थलगढ़ी की परंपरा केवल एक सांस्कृतिक प्रतीक नहीं है, बल्कि यह स्वायत्तता और आत्मरक्षा की चेतना का परिचायक है। कवि यह संदेश देते हैं कि हर विदा एक नई शुरुआत है और हर संघर्ष एक नई क्रांति की भूमि तैयार करता है।

सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक अस्मिता और मानवीय गरिमा की रक्षा के लिए अनुज लुगुन की कविताएँ प्रेरणा का स्रोत हैं। वे पाठकों को न केवल आदिवासी समाज की वास्तविकता से रूबरू कराती हैं, बल्कि उन्हें इस अन्याय के खिलाफ सोचने और खड़े होने के लिए भी प्रेरित करती हैं।

संदर्भ संकेत

1. पत्थलगढ़ी- अनुज लुगुन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण-2023,पृष्ठ-55
2. वही, पृष्ठ- 79
3. वही, पृष्ठ- 56
4. वही, पृष्ठ- 31
5. वही, पृष्ठ- 91
6. वही, पृष्ठ- 36
7. वही, पृष्ठ- 49

©Copyright 2024 *ADRJ*. All Rights Reserved

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4 September-October 2025 / VOL -02 ISSUE-II

14

बॅ. रामराव देशमुख यांचे संयुक्त महाराष्ट्र चळवळीमधील योगदान

प्रा. डॉ. अमोल भाऊरावजी बंड
राज्यशास्त्र विभागप्रमुख
आदर्श विज्ञान जयरामदास भागचंद कला व बिरला वाणिज्य महाविद्यालय धामणगाव रेल्वे.

सारांश :-
बॅ. रामराव देशमुख यांचे संयुक्त महाराष्ट्र चळवळीमध्ये महत्त्वपूर्ण योगदान राहिलेले आहे. बॅ. रामराव देशमुख यांनी जून 1931 मध्ये काँग्रेसचे सर्वाधिकारी महात्मा गांधी यांना सुद्धा वऱ्हाडचा दर्जा ठरवण्यासंदर्भात पत्र लिहिले होते. प्रथमतः ऑक्टोंबर 1938 मध्ये मध्य प्रांतापासून वऱ्हाडला स्वतंत्र प्रांत बनवण्याचा प्रस्ताव त्यांनी विधिमंडळासमोर मांडला. तसेच 1932 मध्ये वऱ्हाड सर्वपक्षीय समितीची सभा अकोला येथे पार पडून त्यामध्ये सुद्धा हा ठराव पास झाला होता. त्यानंतर हिंदुस्तान मध्ये प्रांताची रचना ही भाषावार करण्यात यावी त्या धोरणाला राष्ट्रीय सभेने मंजूर दिली होती. या योजनेनुसार वऱ्हाडमध्ये प्रांताचे नागपूर,विदर्भ आणि महाकोशल असे तीन भाग निर्माण केले आहे. भाषेच्या आधारावर वऱ्हाड मध्यप्रांताचे तीन प्रांत निर्माण केले ते दोनच प्रांत करायला पाहिजे होते. नागपूर वऱ्हाड हे मराठी भाषिक प्रांत असल्यामुळे नागपूर वऱ्हाड मिळून एकच प्रांत निर्माण करायला पाहिजे होता. वऱ्हाड मध्यप्रांताचे भाषेवर आधारित महाविदर्भ व महाकोशल असे दोन प्रांत निर्माण करायला पाहिजे होते. दिनांक 1 ऑक्टोंबर 1938 रोजी मध्यप्रांत वऱ्हाडच्या खरे मंत्रिमंडळातील मंत्री बॅ. रामराव देशमुख यांनी मद्यप्रांत वऱ्हाड मधील मराठी भाषिक प्रदेशाचा स्वतंत्र प्रांत निर्माण करून त्याला विदर्भ असे नाव देण्यात यावे अशा मागणीचा ठराव कायदेमंडळामध्ये मांडला होता. तो मंजूर सुद्धा झाला होता परंतु बॅ. रामराव देशमुख मंत्रीपदाकरिता योग्य व्यक्ती असून सुद्धा त्यांना पुन्हा मंत्री मंडळामध्ये घेण्यात आले नव्हते. हा ठराव मध्य प्रांत कायदेमंडळाने जरी संमत केला असला तरी नागपूर वऱ्हाडच्या एकीकरणाची जनतेची मागणी सुसंघटित जनआंदोलन उभारल्याशिवाय पूर्ण होणार नाही या उद्देशाने 18 ऑगस्ट 1940 रोजी बॅरिस्टर रामराव देशमुख यांच्या अध्यक्षतेखाली वर्धा येथे महाविदर्भ परिषदेची स्थापना करण्यात आली होती. त्यानंतर महाराष्ट्रामध्ये संयुक्त महाराष्ट्राची चळवळ सुरू झाली, महाविदर्भाची मागणी आणि संयुक्त महाराष्ट्र चळवळ हे एकमेकास सहाय्यकच होती. बॅ.रामराव देशमुख ही सुरुवातीपासूनच मुंबईसह संयुक्त महाराष्ट्र अस्तित्वात यावा याच विचाराचे समर्थक होते तसेच महाविदर्भ चळवळ सुद्धा त्यांच्याच नेतृत्वात कार्यरत होती त्यामुळे त्यांच्या संदर्भात अपसमज निर्माण करण्यात आला. त्यांचे धोरण हे अस्पष्ट आहे असे आरोप त्यांच्यावर लावण्यात आले परंतु त्यांच्या स्पष्टवक्तेपणा व कार्याद्वारे लोकांना समजले की वऱ्हाड हा मध्यप्रांताला जोडल्यामुळे वऱ्हाळामध्ये असंतोषाची भावना आहे कारण मध्य प्रदेशातील हिंदी भाषिक बहुसंख्यांक प्रांत हा संख्या व शासनाच्या जोरावर मराठी भाषिक प्रदेशावर अन्याय करतो हिंदी भाषेत बहुसंख्यांक प्रांताकडून मिळणाऱ्या भेदभावपूर्ण वागणुकी मधूनच महाविदर्भाची मागणी पुढे आली आहे मध्य प्रांतातील मराठी भाषिक प्रांताने भविष्यामध्ये मध्यप्रदेशात राहायचे नाही असा निश्चय करून महाविदर्भातवादी आंदोलन पुकारले महाविदर्भवाद्यांना संयुक्त महाराष्ट्राच्या आंदोलनात सहभागी व्हावयास एक अडथळा होता. सन 1936 मध्ये निजाम आणि वऱ्हाड इंग्रजांकडे बहाल करताना त्यांच्यासोबत एक करार केला होता व त्या करारातील शर्तीनुसारच वऱ्हाळ मध्य प्रदेशात सामील करण्यात आला होता ज्या करारातील एक अ अशी होती की निजामाच्या परवानगीशिवाय च्या प्रशासनामध्ये कोणताही बदल करता येणार नाही त्याच वेळेस ब्रिटिश सत्ता एका बाजूने निजामाचे लाड पूरवीत होती व दुसऱ्या बाजूला भारतीयांना सत्ता सोपविण्याच्या विचारात होती अशा स्थितीत वऱ्हाड पुन्हा निजामाच्या नियंत्रणाखाली जाण्याची भीती होती त्यामुळे महाविदर्भवादी चळवळ ही संयुक्त महाराष्ट्राच्या चळवळीपासून वेगळी राहिली तसेच महाराष्ट्र अस्तित्वात येण्यासाठी विलंब लागला तर वर्धा नदीपर्यंत असलेला सर्व मराठी भाषिक प्रांत तसेच भंडारा तसेच नागपूर जिल्हा हिंदी भाषिक महाकोशाल गिळंकृत करेल अशी भीती सुद्धा वाटत होती या भीती संयुक्त महाराष्ट्र अस्तित्वात येणे संभाव्य नसेल तर महाविदर्भ तात्काळ अस्तित्वात यावा अशी भूमिका बॅ. रामराव देशमुख व काही महाविद्यावाद्यांची होती व तात्कालीक परिस्थितीनुसार योग्यच होती. हिंदुस्थानला स्वातंत्र्य मिळताच निजामाचा करार संपुष्टात आला व योग्य परिस्थिती लक्षात घेऊन महाविदर्भवाद्यांकडून संयुक्त महाराष्ट्राच्या मराठी राज्यात समाविष्ट करून घेण्याची मागणी यशस्वी झाली. अशा प्रकारे महाविदर्भवादी चळवळ ही संयुक्त महाराष्ट्र चळवळीला सहाय्यकच होती.

शोधनिबंधाची उद्दिष्टे :-

बॅ. रामराव देशमुख यांचे संयुक्त महाराष्ट्र चळवळीतील योगदानाचे अध्ययन करणे

शोधनिबंधाची गृहीतकृत्ये :-बॅ. रामराव देशमुख यांची संयुक्त मध्यप्रांत व वऱ्हाड येथून तर महाराष्ट्राच्या निर्मितीपर्यंत त्यांची भूमिका ही संयुक्त महाराष्ट्र चळवळीच्या बाजूची होती.

१)प्रस्तावना. :-

मध्य प्रांतातील नागपूर विभाग आणि मुंबई प्रांतातील खानदेश प्रांताच्यामध्ये असलेल्या अमरावती, अकोला, यवतमाळ व बुलढाणा या चार जिल्ह्यांचा समावेश वऱ्हाडमध्ये होतो. या चार जिल्ह्यांवर ब्रिटीशांच्या वहिवाटीवर आधारित राज्यकारभार होत होता परंतु

©Copyright 2024 ADRJ. All Rights Reserved